मशवरे की अहम्मियत

इस्लामी नुक़्त-ए-नज़र से

इमादुल उलमा अल्लामा सै0 मुहम्मद रज़ी साहब क़िब्ला

इन्सान कितना ही इल्म वाला और तजुर्बेकार हो लेकिन हर वक़्त इसका इमकान है कि उसके फैसले और फिक्र में गलती हो जाए इसलिए इस्लाम ने इसे ज़रूरी क़रार दिया है कि ऐसे तमाम एक साथ या अकेले होने वाले कामों में जिनमें मशवरे की गुन्जाईश हो आपस में ज़रूर मशवरा किया जाए और ऐसे लोगों से मशवरा किया जाए जो उसकी पूरी क़ाबलियत और सलाहियत रखते हों और अक़ल व समझ और सोच विचार में बड़े मरतबे पर हों। जब किसी मसले को बहुत से लोग फिक्र व नज़र के मुख़तलिफ अन्दाज़ से देखेंगे तो यक़ीनन उनसे मिलजुल कर एक ऐसा फैसला उभर कर सामने आ जाएगा जिसमें ग़लती और ख़तरों के इमकानात कम से कम होंगे और अकेले राए बना लेने से जो तबाही के नतीजे सामने आ सकते हैं उनसे बड़ी हद तक बचाव मुमकिन हो सकेगा, आपस में मशोरा करने में जहाँ और फाएदे हैं एक बड़ा फाएदा यह भी है कि इसकी वजह से आपसी ताल्लुक़ात खुशगवार हो जाते हैं, मुहब्बत का रिश्ता और मज़बूत हो जाता है, सच्चाई और इत्तेहाद व इत्तेफाक़ में ज़ियादती होती है, हमदर्दी का जज़्बा उभरता है और हर शख़्स की क़द्र दूसरे के दिल में बढ़ जाती है, बस ज़रूरत सबसे ज़्यादा इसी की है कि मशोरा करने में भी सच्चे दिल से काम लिया जाए और मशवरे की नतीजे पर अमल करने और उसकी पाबन्दी करने में भी पूरी ईमानदारी और सच्चाई का सुबूत दिया जाए क्योंकि बहरहाल मशोरा तो दोस्तों ही से किया जाता है और इस उम्मीद से किया जाता है कि हर फरीक़ पूरी सच्चाई के साथ मशोरा लेने वाले मसाएल को समझने और समझाने की कोशिश करेगा और उस मशवरे के नतीजे का दिल से एहतेराम करेगा। इसलिए जहाँ मशवरे से ख़ुद के फाएदे जुड़े हैं साथ ही हमारी साथ गुज़रने वाली ज़िन्दगी के लिए भी आपसी मशोरे तरक़्क़ी, मज़बूती और कामियाबी का बेहतरीन ज़रिया है आपसी मशवरे से ज़हनी और फिक्री ताक़तों को नए–नए रास्ते मिलते हैं, उनकी फितरी ख़ूबियाँ सामने आती हैं। मशवरा करने वालों की अमली ताक़त में एक नया और ताज़ा जोश पैदा हो जाता है और वह मज़बूती हासिल होती है जो बिना मशोरे के कभी हासिल नहीं हो सकती इस तरह आपसी मशवरा एक बड़ी नेमत है जिसके सहारे से लोगों और क़ौमों ने तारीख़ में अपने लिए बड़ी जगह पैदा की है और वह ऐसी मज़बूत चट्टान में बदल गए हैं जो हमेशा दुश्मनों के लिए न टूटने वाली साबित हुईं। आपसी मशोरे घरेलू ज़िन्दगी की महदूद सतह पर हो या क़ौमी और सूबाई पार्लियामेण्ट के मेयार पर एक साथ और बड़े पैमाने पर हो हर जगह यह मज़बूती, कुव्वत, इत्तेफाक़ व इत्तेहाद, सच्चाई व मुहब्बत, तरक़्क़ी और कामियाबी व नजात का ज़बरदस्त सरचश्मा और वसीला है शर्त यह है कि इसकी बुनियादें

ठीक हों और इन्तिहाई सच्चे तरीक़े पर इस मशोरे को सही नतीजे के हासिल करने का ज़रिया बनाने की कोशिश की जाए इसलिए कि अगर उसे उसके उन बुनियादी हुदूद से हटा दिया जाएगा तो फिर सबसे बड़ा ख़तरा और ख़ौफ इस बात का है कि यह मज़बूती का रास्ता बनने के बजाए आपस की फूट और अन्दुरूनी और बाहरी झगड़े का ज़रिया बनकर तबाही व बर्बादी की निशानी बन जाएगी बिलकुल उसी तरह जैसे हम अपनी ही तलवार से ख़ुदकशी भी कर सकते हैं और दुश्मन से बचाव भी। आपसी मशोरा भी एक हथियार की हैसियत रखता है जिसका सही इस्तेमाल क़ौमों की इन्फेरादी और इज्तेमाई ज़िन्दगी के लिए मज़बूती और खुशहाली की ज़मानत है। जबकि उसका ग़लत इस्तेमाल तबाही और रुसवाई का पैग़ाम है।

सूर–ए–आले इमरान में अल्लाह के इस इरशाद में बड़े अहम इशारे हैं जिससे हम अपनी ज़िन्दगी के इस इन्तिहाई ज़रूरी पहलू के लिए बहुत कुछ सीख सकते हैं:–

ऐ रसूल! यह अल्लाह की रहमत ही की वजह से है कि तुम उन लोगों के साथ नर्म रहे और अगर तुम बदमिज़ाज और सख़्त दिल होते तो लोग तुम्हारे पास से भाग गए होते। तो तुम उन लोगों को माफ करो और उनके लिए इस्तेग़फार करो और उनसे मामलात में मशोरा करते रहो लेकिन जब उसके बाद तुम पक्का इरादा कर लिया करो तो फिर अल्लाह पर भरोसा रखो बेशक अल्लाह उन लोगों से मुहब्बत रखता है जो उस पर भरोसा रखते हैं। (सूरे आले इमरान : 159)

सूर–ए–शूरा में इस तरह सच्चे ईमान वालों की तारीफ फरमाई गई है:–

वह अपने परवरदिगार का हुक्म मानते हैं और नमाज़ पढ़ते हैं और उनके सारे काम आपस के मशोरे से होते हैं और जो कुछ हमने उन्हें रिज़्क़ दिया है उसमें से वह ख़ुदा के रास्ते में खर्च करते हैं। (सूरे शूरा : 38)

सरवरे काएनात (स0) ने इसी वजह से भी इन्तिज़ामी मामलों में असहाबे केराम (रजि0) से मशोरा फरमाया करते थे इसके बावजूद कि आपको किसी से भी मशोरे की ज़रूरत न थी और आपको अल्लाह ने इल्म व फिक्र और नुबुवत व रिसालत का वह मरतबा अता किया था जो काएनात में किसी को भी हासिल न था लेकिन इस बात से लोगों की हिम्मत बढ़ती थी और उन तमाम लोगों के लिए यह एक मिसाल बन रही थी जो वाक़ई तोर पर मशोरे के मोहताज होते हैं। लोगों ने आँहज़रत (स0) से पूछा कि अल्लाह ने जो यह फरमाया है कि जब तुम अज़्म कर लो तो फिर ख़ुदा पर भरोसा करो इस 'अज़्म' का क्या मतलब है तो आपने यही फरमाया था कि इससे मुराद यह है कि जब तुम अक़्ल व समझ वाले लोगों से मशोरा कर लो तो फिर इस फैसले पर क़ाएम हो जाओ और अल्लाह की ज़ात और उसकी मदद पर भरोसा रखो, एक हदीस में यह भी फरमाया गया है कि जिस शख़्स से मशोरा किया जाता है वह अमीन होता है, मक़सद यह है कि राए देना भी एक बड़ी अमानत की अदायगी है और उसमें ख़यानत से काम लेना और मशोरे के सही फाएदे को हवा व हवस और ज़ाती या मुनाफिक़ाना ख़यालात की बिना पर नज़रअन्दाज़ करना किसी मुसलमान के लिए जाएज़ नहीं है बल्कि इस काम में इसी अमानत व दयानत और सच्चाई व वफा का अमली सुबूत देना ज़रूरी है जो एक सच्चे मोमिन और तौहीद परस्त का

बक़िया........... पेज 12 पर

जनाबे ज़हरा (स0) के घर में बख़ूबी अन्जाम पा रही थीं। एक रिवायत में है कि जब फातिमा (स0) हसन को खिलाती और ऊपर उछालती थीं तो उस वक़्त उन्हें बहादुरी और बड़ाई का सबक़ भी देती जाती थीं, फरमाती थीं:

''ऐ हसन (अ0) अपने बाप जैसे बनो और हक़ की गर्दन से क़ैद के बंधन खोल दो और एहसान करने वाले ख़ुदा की इबादत व परस्तिश करो और हरगिज़ कीना रखने वालों से दोस्ती न करो।'' (बहारुल अनवारः जि–43 पे–286)

हज़रत फातिमा ज़हरा (स0) ज़िन्दगी के तमाम मौक़ों पर इस्लामी समाज की औरतों और मर्दों के लिए एक बेमिसाल नमूना हैं। आपने मर्दों को तक़वे और ईमान का सबक़ दिया है और औरतों को शौहर की ख़िदमद, बच्चों की सही तरबियत और इस्लामी पर्दे की रिआयत का बेमिसाल सबक़ दिया है।

लेकिन यह निहायत अफसोसनाक हक़ीक़त है कि जनाबे ज़हरा (स0) को उनकी तमाम अज़मत व बुजुर्गी की बावजूद और उनके बारे पैग़म्बरे इस्लाम की सिफारिशात यानीः

फातिमा (स0) मेरा टुकड़ा है, जिसने इसे तकलीफ दी उसने मुझे तकलीफ दी और जिसने मुझे तकलीफ दी उसने ख़ुदा को नाराज़ किया,

के बावजूद उम्मत ने उनके हुक़ूक़ को भुला दिया और पैग़म्बर (स0) की वसिय्यतों और नसीहतों को नज़र अन्दाज़ करके हुज़ूर की इकलौती बेटी को वहशियाना तकलीफें देकर शहीद कर दिया और फातिमा (स0) ग़म व तकलीफ से लबरेज़ दिल और ज़ख़्मों से चूर–चूर बदन के साथ अपने बुज़ुर्ग बाप की मुलाक़ात के लिए रवाना हुईं ताकि अपने बाप से लोगों रवैय्ये की शिकायत करें और उन मुसीबतों और परेशानियों के बाद जन्नत में अपने बुज़ुर्ग बाप के साथ हमेशा की ज़िन्दगी बसर कर सकें। (सहीह् मुस्लिमः जि–4 पे–103)



बक़िया.........मशोरे की अहमियत इस्लामी नुक़्त–ए–नज़र से

इम्तियाज़ी निशान और उसकी लाज़मी ख़ुसूसियत है। एक हदीस में इरशाद हुआ है कि जब तुमसे तुम्हारा कोई भाई मशोरा करे तो तुम उसको भली बात का मशोरा दो यानी मशोरे के इस इन्सानी हक़ के तामीरी अन्दाज़ को छोड़कर उसे किसी तरह के भी ख़राब अन्दाज़ के लिए इस्तेमाल न करो और जब मशोरे का काम अपनी सही और ठीक बुनियादों पर मुकम्मल हो जाए तो फिर पूरे भरोसे और यक़ीन और जज़्ब–ए–अमल के साथ उस काम को अन्जाम दो और ख़ुदा पर भरपूर भरोसा रखो। ग़र्ज़ अहलियत रखने वालों से मशोरा करना मुसलमानों की इस्लामी निशानी है और किसी को राए देना एक ऐसी अमानत को अदा करना है जिसमें किसी तरह भी धोके का देना किसी मुसलमान के लिए कभी जायज़ नहीं हो सकता। आपसी मशोरा और एक साथ, कारोबारी और समाजी बल्कि इन्सानी ज़िन्दगी के हर हिस्से में आपसी कामियाबी के लिए एक बड़ी बुनियाद और बहुत ही अहम ज़मानत और बड़ा मज़बूत रास्ता और सरमाया है।

